षष्ठ सोपान- मंगलाचरण

श्लोक :

*** रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्। मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम्॥1॥

भावार्थ:-

कामदेव के शत्रु शिवजी के सेव्य, भव (जन्म-मृत्यु) के भय को हरने वाले, काल रूपी मतवाले हाथी के लिए सिंह के समान, योगियों के स्वामी (योगीश्वर), ज्ञान के द्वारा जानने योग्य, गुणों की निधि, अजेय, निर्गुण, निर्विकार, माया से परे, देवताओं के स्वामी, दुष्टों के वध में तत्पर, ब्राह्मणवृन्द के एकमात्र देवता (रक्षक), जल वाले मेघ के समान सुंदर श्याम, कमल के से नेत्र वाले, पृथ्वीपति (राजा) के रूप में परमदेव श्री रामजी की मैं वंदना करता हूँ॥1॥

*** शंखेन्द्वाभमतीवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं कालव्यालकरालभूषणधरंगंगाशशांकप्रियम्। काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शंकरम्॥2॥

भावार्थ:-

शंख और चंद्रमा की सी कांति के अत्यंत सुंदर शरीर वाले, व्याघ्रचर्म के वस्त्र वाले, काल के समान (अथवा काले रंग के) भयानक सर्पों का भूषण धारण करने वाले, गंगा और चंद्रमा के प्रेमी, काशीपति, कलियुग के पाप समूह का नाश करने वाले, कल्याण के कल्पवृक्ष, गुणों के निधान और कामदेव को भस्म करने वाले, पार्वती पति वन्दनीय श्री शंकरजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥2॥ यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्। खलानां दण्डकृद्योऽसौ शंकरः शं तनोतु मे॥3॥

भावार्थ:-

जो सत् पुरुषों को अत्यंत दुर्लभ कैवल्यमुक्ति तक दे डालते हैं और जो दुष्टों को दण्ड देने वाले हैं, वे कल्याणकारी श्री शम्भु मेरे कल्याण का विस्तार करें॥3॥

दोहा :

*** लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड। भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड॥

भावार्थ:-

लव, निमेष, परमाणु, वर्ष, युग और कल्प जिनके प्रचण्ड बाण हैं और काल जिनका धनुष है, हे मन! तू उन श्री रामजी को क्यों नहीं भजता?

नल-नील द्वारा पुल बाँधना, श्री रामजी द्वारा श्री रामेश्वर की स्थापना

सोरठा :

*** सिंधु बचन सुनि राम सचिव बोलि प्रभु अस कहेठ। अब बिलंबु केहि काम करहु सेतुउतरै

कटकु॥

भावार्थ:-

समुद्र के वचन सुनकर प्रभु श्री रामजी ने मंत्रियों को बुलाकर ऐसा कहा अब विलंब किसलिए हो रहा है? सेतु (पुल) तैयार करो, जिसमें सेना उतरे।

*** सुनहु भानुकुल केतु जामवंत कर जोरि कह। नाथ नाम तव सेतु नर चढ़िभव सागर तरहिं॥

भावार्थ:-

जाम्बवान् ने हाथ जोड़कर कहा- हे सूर्यकुल के ध्वजास्वरूप (कीर्ति को बढ़ाने वाले) श्री रामजी! सुनिए। हे नाथ! (सबसे बड़ा) सेतु तो आपका नाम ही है, जिस पर चढ़कर (जिसका आश्रय लेकर) मनुष्य संसार रूपी समुद्र से पार हो जाते हैं।

चौपाई :

*** यह लघु जलधि तरत कति बारा। अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा॥ प्रभु प्रताप बड़वानल भारी। सोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी॥1॥

भावार्थ:-

फिर यह छोटा सा समुद्र पार करने में कितनी देर लगेगी? ऐसा सुनकर फिर पवनकुमार श्री हनुमान्‌जी ने कहा- प्रभु का प्रताप भारी बड़वानल (समुद्र की आग) के समान है। इसने पहले समुद्र के जल को सोख लिया था,॥1॥

*** तव रिपु नारि रुदन जल धारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहिं खारा॥ सुनि अति उकुति पवनसुत केरी। हरषे कपि रघुपति तन हेरी॥2॥

भावार्थ:-

परन्तु आपके शत्रुओं की स्त्रियों के आँसुओं की धारा से यह फिर भर गया और उसी से खारा भी हो गया। हनुमान्‌जी की यह अत्युक्ति (अलंकारपूर्ण युक्ति) सुनकर वानर श्री रघुनाथजी की ओर देखकर हर्षित हो गए॥2॥

*** जामवंत बोले दोउ भाई। नल नीलहि सब कथा सुनाई॥ राम प्रताप सुमिरि मन माहीं। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं॥3॥

भावार्थ:-

जाम्बवान् ने नल-नील दोनों भाइयों को बुलाकर उन्हें सारी कथा कह सुनाई (और कहा-) मन में श्री रामजी के प्रताप को स्मरण करके सेतु तैयार करो, (रामप्रताप से) कुछ भी परिश्रम नहीं होगा॥3॥

*** बोलि लिए कपि निकर बहोरी। सकल सुनहु बिनती कछु मोरी॥ राम चरन पंकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू॥4॥

भावार्थ:-

फिर वानरों के समूह को बुला लिया (और कहा-) आप सब लोग मेरी कुछ विनती सुनिए। अपने

हृदय में श्री रामजी के चरण-कमलों को धारण कर लीजिए और सब भालू और वानर एक खेल कीजिए॥4॥

*** धावहु मर्कट बिकट बरूथा। आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा॥सुनि कपि भालु चले करिहूहा। जय रघुबीर प्रताप समूहा॥5॥

भावार्थ:-

विकट वानरों के समूह (आप) दौड़ जाइए और वृक्षों तथा पर्वतों के समूहों को उखाड़ लाइए। यह सुनकर वानर और भालू हूह (हुँकार) करके और श्री रघुनाथजी के प्रताप समूह की (अथवा प्रताप के पुंज श्री रामजी की) जय पुकारते हुए चले॥5॥

दोहा :

*** अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ। आनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाइ॥1॥

भावार्थ:-

बहुत ऊँचे-ऊँचे पर्वतों और वृक्षों को खेल की तरह ही (उखाड़कर) उठा लेते हैं और ला-लाकर नल-नील को देते हैं। वे अच्छी तरह गढ़कर (सुंदर) सेतु बनाते हैं॥1॥

चौपाई :

*** सैल बिसाल आनि कपि देहीं। कंदुक इव नल नील ते लेहीं॥ देखि सेतु अति सुंदर रचना। बिहसि कृपानिधि बोले बचना॥1॥

भावार्थ:-

वानर बड़े-बड़े पहाड़ ला-लाकर देते हैं और नल-नील उन्हें गेंद की तरह ले लेते हैं। सेतु की अत्यंत सुंदर रचना देखकर कृपासिन्धु श्री रामजी हँसकर वचन बोले-॥1॥

*** परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिं बरनी॥ करिहउँ इहाँ संभु थापना। मोरे हृदयँ परम कलपना॥2॥

भावार्थ:-

यह (यहाँ की) भूमि परम रमणीय और उत्तम है। इसकी असीम महिमा वर्णन नहीं की जा सकती। मैं यहाँ शिवजी की स्थापना करूँगा। मेरे हृदय में यह महान् संकल्प है॥2॥

*** सुनि कपीस बहु दूत पठाए। मुनिबर सकल बोलि लै आए॥ लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥3॥

भावार्थ:-

श्री रामजी के वचन सुनकर वानरराज सुग्रीव ने बहुत से दूत भेजे, जो सब श्रेष्ठ मुनियों को बुलाकर ले आए। शिवलिंग की स्थापना करके विधिपूर्वक उसका पूजन किया (फिर भगवान बोले-) शिवजी के समान मुझको दूसरा कोई प्रिय नहीं है॥3॥

*** सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥ संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥4॥

भावार्थ:-

जो शिव से द्रोह रखता है और मेरा भक्त कहलाता है, वह मनुष्य स्वप्न में भी मुझेनहीं पाता। शंकरजी से विमुख होकर (विरोध करके) जो मेरी भक्ति चाहता है, वह नरकगामी, मूर्ख और अल्पबुद्धि है॥4॥

दोहा :

*** संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास। ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥2॥

भावार्थ:-

जिनको शंकरजी प्रिय हैं, परन्तु जो मेरे द्रोही हैं एवं जो शिवजी के द्रोही हैं औरमेरे दास (बनना चाहते) हैं, वे मनुष्य कल्पभर घोर नरक में निवास करते हैं॥2॥

चौपाई :

*** जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥ जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि॥1॥

भावार्थ:-

जो मनुष्य (मेरे स्थापित किए हुए इन) रामेश्वरजी का दर्शन करेंगे, वे शरीर छोड़कर मेरे लोक को जाएँगे और जो गंगाजल लाकर इन पर चढ़ावेगा, वह मनुष्य सायुज्य मुक्तिपावेगा (अर्थात् मेरे साथ एक हो जाएगा)॥1॥

*** होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि॥ मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही॥2॥

भावार्थ:-

जो छल छोड़कर और निष्काम होकर श्री रामेश्वरजी की सेवा करेंगे, उन्हें शंकरजी मेरी भक्ति देंगे और जो मेरे बनाए सेतु का दर्शन करेगा, वह बिना ही परिश्रम संसार रूपी समुद्र से तर जाएगा॥2॥

*** राम बचन सब के जिय भाए। मुनिबर निज निज आश्रम आए॥ गिरिजा रघुपति कै यह रीती। संतत करहिं प्रनत पर प्रीती॥3॥

भावार्थ:-

श्री रामजी के वचन सबके मन को अच्छे लगे। तदनन्तर वे श्रेष्ठ मुनि अपने-अपने आश्रमों को लौट आए। (शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! श्री रघुनाथजी की यह रीति है कि वे शरणागत पर सदा प्रीति करते हैं॥3॥

*** बाँधा सेतु नील नल नागर। राम कृपाँ जसु भयउ उजागर॥ बूड़हिं आनहि बोरहिं जेई। भए उपल बोहित सम तेई॥4॥

भावार्थ:-

चतुर नल और नील ने सेतु बाँधा। श्री रामजी की कृपा से उनका यह (उज्ज्वल) यश सर्वत्र फैल

गया। जो पत्थर आप डूबते हैं और दूसरों को डुबा देते हैं, वे ही जहाज के समान (स्वयं तैरने वाले और दूसरों को पार ले जाने वाले) हो गए॥4॥

*** महिमा यह न जलधि कइ बरनी। पाहन गुन न कपिन्ह कइ करनी॥5॥

भावार्थ:-

यह न तो समुद्र की महिमा वर्णन की गई है, न पत्थरों का गुण है और न वानरों की ही कोई करामात है॥5॥

दोहा :

*** श्री रघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान। ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभुआन॥3॥

भावार्थ:-

श्री रघुवीर के प्रताप से पत्थर भी समुद्र पर तैर गए। ऐसे श्री रामजी को छोड़कर जो किसी दूसरे स्वामी को जाकर भजते हैं वे (निश्चय ही) मंदबुद्धि हैं॥3॥

चौपाई :

*** बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा। देखि कृपानिधि के मन भावा॥ चली सेन कछु बरनि नजाई। गर्जहिं मर्कट भट समुदाई॥1॥

भावार्थ:-

नल-नील ने सेतु बाँधकर उसे बहुत मजबूत बनाया। देखने पर वह कृपानिधान श्री रामजी के मन को (बहुत ही) अच्छा लगा। सेना चली, जिसका कुछ वर्णन नहीं हो सकता। योद्धा वानरों के समुदाय गरज रहे हैं॥1॥

*** सेतुबंध ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपाल सिंधु बहुताई॥ देखन कहुँ प्रभु करुनाकंदा। प्रगट भए सब जलचर बृंदा॥2॥

भावार्थ:-

कृपालु श्री रघुनाथजी सेतुबन्ध के तट पर चढ़कर समुद्र का विस्तार देखने लगे। करुणाकन्द (करुणा के मूल) प्रभु के दर्शन के लिए सब जलचरों के समूह प्रकट हो गए (जल के ऊपर निकल आए)॥2॥

*** मकर नक्र नाना झष ब्याला। सत जोजन तन परम बिसाला॥ अइसेउ एक तिन्हहि जे खाहीं। एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं॥3॥

भावार्थ:-

बहुत तरह के मगर, नाक (घड़ियाल), मच्छ और सर्प थे, जिनके सौ-सौ योजन के बहुत बड़े विशाल शरीर थे। कुछ ऐसे भी जन्तु थे, जो उनको भी खा जाएँ। किसी-किसी के डर से तो वे भी डर रहे थे॥3॥

*** प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भए सुखारे॥ तिन्ह कीं ओट न देखिअ बारी। मगन भए हरि रूप निहारी॥4॥

भावार्थ:-

वे सब (वैर-विरोध भूलकर) प्रभु के दर्शन कर रहे हैं, हटाने से भी नहीं हटते। सबके मन हर्षित हैं, सब सुखी हो गए। उनकी आड़ के कारण जल नहीं दिखाई पड़ता। वे सब भगवान् का रूप देखकर (आनंद और प्रेम में) मग्न हो गए॥4॥ चला कटकु प्रभु आयसु पाई।को कहि सक कपि दल बिपुलाई॥5॥

भावार्थ:-

प्रभु श्री रामचंद्रजी की आज्ञा पाकर सेना चली। वानर सेना की विपुलता (अत्यधिक संख्या) को कौन कह सकता है?॥5॥